© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

उत्तररामचरित में द्रष्टव्य सामाजिक तत्त्व

भूपेन्द्र प्रताप सिंह,

शोधच्छात्र संस्कृत विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय ऋषियों, महर्षियों, मनीषियों तथा तत्त्ववेत्ताओं की आदर्श वाणी का समन्वय है। संस्कृत काव्यशास्त्र का आदिकाव्य महर्षि वाल्मीकि की आदिवाणी का प्रस्फुटन है, जो इस चराचर जगत् को अपने कारूण्य और वात्सल्य भाव से आप्लावित करता है। आदिकाव्य रामायण एक ऐसा दर्पण है जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक आदि समस्त व्यवस्थाओं का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।[1]

आदिकवि की वाणी से एक उन्नत समाज की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ जो कालान्तर में किञ्चत् परिवर्तनों के साथ दृष्टिगोचर है। रामायण एक अनन्त ज्ञानराशि है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित रहता है। यह एक उपजीव्य काव्य के रूप में अथाह विषयों का स्त्रोत है जिसका अवगाहन अनेक परवर्ती कवियों, विद्वानों के द्वारा किया गया।

उत्तररामचरित नाटक महाकवि भवभूति की कृतियों में सर्वोत्कृष्ट है तथा आदिकाव्य के उत्तरभाग की उपजीव्यता का एक सम्यक् वर्णन है। महाकवि भवभूति की प्रसिद्धि का आधार उत्तररामचरित ही है जिसमें उन्होंने अपनी काव्यगत वैशिष्ट्य को मूलविषय के साथ तारतम्य वर्णन के रूप में किया है। इनके कारूण्य का वर्णन अद्वितीय है।

'उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'

महाकवि भवभूति ने रामायण कालीन समस्त विशेषताओं को संस्कृत वाङ्मय के नभमण्डल में नवीन एवं सजीव स्वरूप के साथ प्रतिस्थापित किया।

उत्तररामचरित में रामायणकालीन सामाजिक व्यवस्था का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया। सामाजिक व्यवस्था का अनुकरणीय स्वरूप ही आदिकाव्य रामायण का प्राणतत्त्व है।

सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति तथा उसके आस–पास उपस्थित वातावरण का सम्मिलित रूप है। स्पष्टतः व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र है, इसी के द्वारा समस्त सामाजिक प्रक्रियायें सम्पन्न होती हैं। व्यक्ति के द्वारा परिवार, परिवार के द्वारा समूह तथा समूह के द्वारा समाज की स्थापना होती है। समाज निर्माण के कुछ विधान होते हैं जिसको आधार मानकर सभी व्यक्ति भूमि, पर्यावरण तथा विचारों का उपभोग करते हैं। रामायणकालीन सामाजिक व्यवस्था के मूलतत्त्व धर्म, आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, गुरूकुल व्यवस्था, यज्ञ, तप, संयमित व्यवहार, स्वधर्म पालन तथा राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। कलात्मक कुशलता तथा दार्शनिक विचारों का आदान–प्रदान भी होता था।

उत्तरामचरित में रामायणकालीन सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज धर्म पर आश्रित था क्योंकि भवभूति ने रामायण को वेदान्त–विवर्त माना तथा त्रिगुणात्मक शब्दब्रह्म के स्वरूप को उद्घाटित किया।

विद्याकल्पेन मरूता मेघानां भूयसामपि।

ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।।[2]

शब्द ब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।[3]

परब्रह्म की सत्ता में विश्वास धर्म का आधार है। मनुष्य अपने धर्म पालन द्वारा किये गये कर्मफल से मोक्ष प्राप्ति करता है। धर्माचरण से वह जन्म–मरण तथा आवागमन से मुक्त हो जाता है।

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।[4]

उत्तररामचरित में रामायण कालीन आश्रम व्यवस्था तथा वर्णव्यवस्था युक्त समाज का वर्णन है। गुरूकुल व्यवस्था की आश्रम पद्धति में संयम, वेदाध्ययन, अस्त्र–शस्त्र ज्ञान की शिक्षा प्रचलित थी। जटा, माला, यज्ञापवीत धारण कर ब्रह्मचारी वेश में शिक्षा प्रदान की जाती थी।

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो।

वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।।[5]

पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोडपरः पैप्पलः।[6]

वर्णव्यवस्था के आधार पर वर्णभेद प्रचलित था। ब्राह्मण श्रेष्ठ वर्ण था इनकी सामाजिक स्थिति अन्य सभी वर्णों से उच्च थी। तप, ज्ञान एवं संस्कार इनका व्यवहार होता था। शिक्षा प्रदान करना इन्हीं का अधिकार था।

सिद्ध ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानाम्।[7]

अन्य वर्णों में क्षत्रिय का स्थान था जो गुरूकुल में वेदों, अस्त्र–शस्त्रों का अध्ययन कर अपने बाहुबल से सामाजिक व्यवस्था का संचालन करते थे।

वाàोवीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।[8]

रामायणकालीन समाज में शूद्रों की स्थिति दयनीय थी। उत्तर–रामचरित में शम्बूक नामक शूद्र की शिक्षा एवं तपस्या का अधिकार न होने पर तपस्या करने पर अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं। अतः शूद्र वर्ण के लोग निकृष्टतम जीवन जीते थे।

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।[9]

सामाजिक व्यवस्था में गृहस्थ आश्रम को महत्त्वपूर्ण माना गया है। गृहस्थ जीवन एक संघर्ष का समय होता था। इसमें व्यक्ति अपने आश्रितों यथा पत्नी, बच्चे तथा माता–पिता, परिवार, समाज यज्ञादि कर्मों के साथ सामंजस्य रखता था। सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व गृहस्थ के ऊपर ही था।

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्रयमपकर्षति।

संकटा áाहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।[10]

उत्तररामचरितम् में वर्णित नारी रामायण कालीन नारी का ही प्रतिबिम्ब थी। सामाजिक तंत्र में उसे सीमित स्वतंत्रता थी। जहाँ एक ओर उसे यज्ञादि कर्म करने की अनुमति थी[8] वहीं उसे समाज में रूढ़िमतों, प्रचलित

प्रथाओं, पूर्वाग्रहों पर आधारित कठोर नियमों का पालन भी करना होता है। लोकापवाद, प्रपंच के द्वारा स्त्रियों को कष्टमय, निकृष्ट जीवन भी जीना पड़ता था।

हिरण्यमयी सीता प्रतिकृतिर्गृहिणी कृता।[11]

करूणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी

विरहव्यथेव वनमेति जानकी।[12]

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में जहाँ एक ओर मर्यादा होती है, वहीं दूसरी ओर अफवाह, अविश्वास और वैमनस्य पर आधारित तिरस्कार। जिससे इन्हें सामाजिक दुर्दशा तथा ताड़ना को झेलना पड़ता है।

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ávचनीयता।

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।[13]

रामायणकालीन सामाजिक व्यवस्था पुरूषवादी थी। राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। राजा के द्वारा प्रजानुरŒजन हेतु यज्ञादि–कर्म किये जाते थे। वृद्धावस्था में राजा अपने पुत्र को उत्तराधिकार सौंपकर वानप्रस्थ ग्रहण करता था। राजा लोककल्याण, दुष्टों का नाश तथा प्रजा के कल्याणार्थ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता था। इस प्रकार रामायण काल में राजा व्यक्तिगत उत्थान न कर सामाजिक व्यवस्था के सुचारू संचालन का दायित्व वहन करता था जिसके लिए उसे अपने पुत्र, स्त्री, परिवार आदि का भी त्याग करना पड़ता था।

पुत्र संक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।

धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।।[14]

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै–

रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।[15]

तत्कालीन सामाजिक संस्कृति में रामराज्य को एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था के दृष्टान्त के रूप में अनुकरणीय माना जाता है। उस सामाजिक व्यवस्था में परस्पर सहयोग, समन्वय की भावना विकसित थी। प्रत्येक व्यक्ति सौहार्द्रपूर्ण एवं मर्यादित आचरण करते हुए आधिदैहिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक संतापों से मुक्त होकर स्वधर्म पालन करता हुआ एक आदर्श समाज का निर्माण करता था। भारतीय ऋषियों/मनीषियों ने मनुष्य द्वारा विषादग्रस्त होने पर किये जाने वाले स्वआत्मघात या आत्महत्या को महापाप कहा है।

अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यते।[16]

उत्तररामचरित में सामाजिक व्यवस्था के उन्नायक स्त्री और पुरूष को कारूण्य और वल्सलता के पर्यायरूप में चित्रित किया गया है यथा–

एको रसः करूण एवं निमित्तभेदात्

भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान।[11]

आवर्त बुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा–

नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम्।।[17]

इस प्रकार महाकवि भवभूति उत्तररामचरित की रचना काल के समय तक समाज के सभी मूल तत्त्वों तथा लक्षणों को रामायणकालीन समाज तथा सभ्यता के उन्नायक आदर्शों से अनुप्राणित करते हैं। उत्तर–रामचरित

में वर्णित समाज एवं सभ्यता का वर्तमान समय में दृष्टान्त तो दिया जाता है परन्तु उसका सर्वथा पालन नहीं किया जा रहा है। उत्तररामचरित में वर्णित समाज उन्नत आदर्शों से परिपूर्ण तथा संस्कृति यज्ञ, तप, संस्कार आदि से पोषित थी। रामायणकालीन संस्कृति में वर्णाश्रम व्यवस्था तथा धार्मिक आस्था का प्रचलन था। राजा भी अपने राजधर्म के पालन हेतु सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहता है जिसका उदाहरण सम्पूर्ण ग्रन्थ में पदे–पदे उपदिष्ट है। उस समाज की प्रमुख विशेषता पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही थी जिसके द्वारा वहाँ पर नियम, संयम, व्रत तथा धर्म को ही जीवन का मूल आधार माना गया है। उस सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा, को बहुत महत्त्व दिया जाता था। गुरूकुल व्यवस्था के अन्तर्गत आश्रम में शिष्यों को वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मचर्य व्रत, अस्त्रशस्त्रादि की शिक्षा, निरोगी काया, धर्म की शिक्षा, न्याय, राजनीति एवं दर्शन की अनुकरणीय शिक्षा प्रदान करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1ण ध्वन्यालोक– 1/5

2ण उत्तररामचरितम्– 6/6

3ण उत्तररामचरितम्– 2/वाक्य– 24

4ण उत्तररामचरितम्– 2/11

5ण उत्तररामचरितम्– 4/19

6ण उत्तररामचरितम्– 4/20

7ण उत्तररामचरितम्– 5/31 1/4

8ण उत्तररामचरितम्– 5/32

9ण उत्तररामचरितम्– 2/8

10णउत्तररामचरितम्– 1/8

11णउत्तररामचरितम्– 2/वाक्य–46

12णउत्तररामचरितम्– 3/4

13णउत्तररामचरितम्– 1/5

14णउत्तररामचरितम्– 1/22

15णउत्तररामचरितम्– 1/28

16णउत्तररामचरितम्– 4/वाक्य–24 ख

17णउत्तररामचरितम्– 3/47